Anusanadhan: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Volume 11, 2026 (Special Issue): Pg. No. 22-28
Peer Reviewed Journal

Research Article

भारतीय पर्यावरण चिंतन एवं सतत् विकास की अवधारणा

आंचल[1], अजय परमार[2]

[1]शोधछात्रा, भाषा एवं आधुनिक ज्ञान विज्ञान विभाग, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, बहादराबाद, उत्तराखंड, भारत|
[2]सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, बहादराबाद, उत्तराखंड, भारत|

DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202610

I N F O

Corresponding Author:
आंचल, भाषा एवं आधुनिक ज्ञान विज्ञान विभाग, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, बहादराबाद, उत्तराखंड, भारत|
E-mail Id:
anchalnagar8405@gmail.com
Orcid Id:
https://orcid.org/
How to cite this article:
आंचल, भारतीय पर्यावरण चिंतन एवं सतत् विकास की अवधारणा, Anu: a, Mul, Int, Jour, *Vol 11, 2026 (Special Issue): Pg. No. 22-28*

Date of Submission: 2026-03-02
Date of Acceptance: 2026-03-30

A B S T R A C T

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय पर्यावरण चिंतन एवं सतत विकास की अवधारणा विषय पर प्रकाश डाला गया है, भारतीय परिपेक्ष में पर्यावरण के सभी अवयवों को जैविक शक्ति का दर्जा दिया गया है। हिंदू धर्म शास्त्रों में प्रकृति पूजा का विधान दिया गया है जो या दर्शाता है कि हमारे भारतीय मनीषी पर्यावरण के प्रति कितने संवेदनशील थे, तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने कितने महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किए। वर्तमान में सतत विकास शब्द अत्यधिक प्रचलन में है परंतु इसकी जड़े हमें प्राचीन काल से ही दिखाई देती है, हमारे शास्त्रों में प्रारंभ से ही यह बताया गया है कि प्रकृति द्वारा दी गई प्रत्येक वस्तु अथवा संसाधन का प्रयोग इस प्रकार किया जाए जिससे वह पूर्णतया नष्ट ना हो तथा वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकता को पूर्ण करते हुए भविष्य में आने वाली पीढियों के लिए भी सुरक्षित रह सके। सामान्य शब्दों में कहा जाए तो सतत विकास को संधारणीय विकास, टिकाऊ या स्थाई विकास आदि नामों से जाना जाता है। जिससे तात्पर्य है कि प्रकृति से हमें जो कुछ भी प्राप्त होता है उसको इस प्रकार से प्रयोग में लाया जा सके कि भविष्य की पीढ़ी को समझौता न करना पड़े।

Copyright (c) 2026: Author(s). Published by Advanced Research Publications

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही हमारे भारतीय समाज में सतत विकास को लेकर अनेक प्रकार के उदाहरण मिलते हैं, जैसा की ऋग्वेद में भी कहा गया है कि मनुष्य को व्यवहार से सदाचारी होना चाहिए किसी के प्रति हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त भारतीय धर्म शास्त्रों आदि में पर्यावरण संरक्षण पारिस्थितिकी संतुलन तथा वन्य जीव संरक्षण के उपाय सुझाए गए हैं। प्राचीन काल में सतत विकास की जो नींव रखी गई थी, उसी के परिणाम स्वरूप उसे समझ में लोगों का जीवन स्तर अत्यधिक स्वस्थ एवं संसाधन संपन्न था। परंतु आधुनिकता की ओर अग्रसर होता मानव प्रकृति को नुकसान पहुंचा कर विकास के नए-नए तरीके खोजने लगा जिसके कारण पर्यावरण का संतुलन बिगड़ गया तथा वन्य जीवों एवं विभिन्न प्रकार की मूल्यवान वनस्पतियों का ह्रास होता चला गया। 1970 ई० के दशक में यह अनुभव किया गया कि विकास अपनी प्रकृति और विस्तार में जिस प्रकार लागू किया जा रहा है, ऐसी स्थिति में वह मानव जाति की सहायता काम और हानि अत्यधिक करेगा।

प्रकृति से प्राप्त होने वाले प्राकृतिक संसाधन जो इस सृष्टि का आधारभूत स्रोत है उनके अंधाधुंध दोहन के परिणाम स्वरूप स्थिति अत्यंत चिंताजनक स्तर पर पहुंच चुकी है। विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने की अंधाधुंध दौड़ ने पारिस्थितिकी असंतुलन, पर्यावरण प्रदूषण तथा वायु एवं जल प्रदूषण को उत्पन्न किया है। इसके अतिरिक्त भविष्य में ऊर्जा के संभावित संकट जो जीवन यापन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक हैं उसे पर भी संकट का अनुभव किया जा रहा है। संसाधनों के ह्रास तथा पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याओं के समाधान के लिए विद्वानों ने सतत विकास के उपागम का विकास किया है। इसी प्रकार भविष्य में आने वाले संकट को दृष्टिगत रखते हुए सतत विकास की अवधारणा का विकास हुआ। सतत विकास उपागम विकास का वह प्रकार है जिसके द्वारा एक तरफ वर्तमान की पीढियों को बेहतर जीवन अवसर एवं स्वस्थ जीवन स्तर उपलब्ध कराती है वहीं दूसरी ओर यह उपागम विकास की प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभावों को भी कम करने का प्रयास करती है। जिससे वर्तमान तथा भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को एक उन्नत स्वस्थ तथा संतुलित विकास उपागम प्राप्त हो सके।

वर्ष 1998 में इकोनामिक सर्वे आफ इंडिया के अनुसार सतत विकास आने वाली पीढियों की क्षमता को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण संरक्षण के उत्तरदायित्व के साथ विकास को आगे बढ़ने का एक सफल प्रयास सिद्ध हो सकता है। 1927 ई० की संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में सतत विकास को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि "मानवता के लिए यह संभव है कि वह विकास को सतत बना सके जिससे वह अपनी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार करें कि भविष्य की पीढ़ियों को किसी भी प्रकार के संकट का सामना न करना पड़े।" सतत विकास का अर्थ उसे सामाजिक आर्थिक तथा पर्यावरणीय व्यवस्था से है जिसके परिणाम स्वरूप संसाधनों का उपभोग इस प्रकार से किया जाए की प्रकृति की प्राकृतिक स्थिरता तथा उसका सौंदर्य बना रहे। इसके साथ ही प्रकृति के स्थिति पर कोई प्रतिघात ना किया जाए और इसके साथ ही आने वाली मानव संततियों की आवश्यकता को व्यवस्थित एवं सुचारू रूप से पूर्ण किया जा सके।वर्तमान युग विकास का युग है अतः सतत विकास, विकास का एक सार्वभौमिक एवं भूमंडलीय दृष्टिकोण बन चुका है। सर्वप्रथम 1992 ई० के रियो डी जेनेरियो में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन में सतत विकास के प्रति पूर्ण समर्थन व्यक्त किया गया। इस सम्मेलन में एजेंडा 21 तथा 17 संपोषणीय विकास लक्षण को चिन्हित किया गया। भारत सहित विश्व के 193 देशों ने संयुक्त राष्ट्र महासभा उच्च स्तरीय बैठक में एजेंडा 21 को स्वीकार कर सतत विकास उपागम को आगे बढ़ाने में अपनी सहमति व्यक्त की। एजेंडा 21 को विश्व स्तर पर 1 जनवरी 2016 से लागू किया गया है तथा अगले 15 सालों में साल 2030 तक सतत विकास के इन 17 लक्षण को हासिल करने का लक्ष्य रखा गया है।

वैदिक एवं पौराणिक आधार: प्रकृति के साथ एकात्मता

भारतीय चिंतन में पर्यावरण को जड़ नहीं अपितु चेतन माना गया है, हमारे वेदों पुराणों एवं अन्य धार्मिक पुस्तकों में पर्यावरण संरक्षण के अनेक उपाय सुझाए गए हैं तथा प्रकृति को एक ऐसे माता का स्थान दिया गया है जो पृथ्वी पर मौजूद सभी जीवो का भरण पोषण करती है। इतना ही नहीं पर्यावरण के विभिन्न घटकों जैसे पृथ्वी जल वायु एवं आकाश आदि को भी हमारे भारतीय चिंतन में दैवीय शक्ति का प्रतिबिंब माना गया है एवं उनकी सुरक्षा मानव का एक प्रमुख कर्तव्य बताया गया है। (मिश्रा ,2017) प्राचीन ग्रंथो में पर्यावरण संरक्षण के स्पष्ट निर्देश दृष्टिगोचर होते हैं:

अथर्ववेद का भूमि सूक्त

अथर्ववेद के भूमि सूक्त को विश्व का प्रथम पर्यावरण संरक्षण घोषणा पत्र माना जा सकता है। इसमें कहा गया है कि "माता भूमिः पुत्रोअहम् पृथिव्याः" अथर्व० 12/1/12 अर्थात पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं। (मिश्रा, 2017) अथर्ववेद के इस मंत्र का भाव यह है कि यह मनुष्य को स्वामी के बजाय प्रकृति के रक्षक की भूमिका में रखता है। इस मंत्र के द्वारा यह दर्शाया गया है कि पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी जीव पृथ्वी की संतान है एवं पृथ्वी उनकी माता है तथा पृथ्वी का संरक्षण करना प्रत्येक मनुष्य का महत्वपूर्ण कर्तव्य है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पर्यावरण संरक्षण के प्रमाण

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि वनों की कटाई और जीवों की हत्या पर दंड का प्रावधान किया जाएगा, यह प्राचीन भारत में पर्यावरण संबंधी नीतियों को दर्शाता है।

जैन एवं बौद्ध दर्शन में पर्यावरण संरक्षण

जैन एवं बौद्ध दोनों ही दर्शन में अहिंसा और प्रत्येक जीव के प्रति करुणा का भाव दर्शाया गया है जो सतत विकास का नैतिक आधार है। (कुमार, 2019)

ऋत् की अवधारणा

हमारे सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद में ऋत् की अवधारणा है, जो प्राकृतिक और नैतिक व्यवस्था का प्रतीक माना गया है। वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम ऋत् शब्द का प्रयोग सृष्टि के भौतिक संविधान के अर्थ के रूप में किया गया था किंतु इसके पश्चात इसमें मनुष्यों का आचरण एवं स्वभाव भी सम्मिलित कर लिया गया। वेद में इसका एक उदाहरण मिलता है जिसमें एक प्रार्थना में कहा गया है कि ही देवताओं! हमें ऋत् के मार्ग पर ले चलो और हमेशा अनृत से दूर रखो। (ऋग्वेद- 10/133/6) Encyclopedia Britannica में भी ऋत् की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है, "rita, in Indian religion and philosophy, the cosmic order mentioned in the Vedas, the ancient sacred scriptures of India. As Hinduism developed from the ancient Vedic religion, the concept of rita led to the doctrines of dharma (duty) and karma (accumulated effects of good and bad actions). Rita is the physical order of the universe, the order of the sacrifice, and the moral law of the world.

हमारे मनीषियों के अनुसार जब कोई मनुष्य अपने लालचवश इस अवधारणा को तोड़ता है, तो इसके परिणाम अत्यंत गंभीर हो सकते हैं तथा हमें अनेक पर्यावरणीय आपदाओं का सामना करना पड़ सकता है। इन पर्यावरणीय आपदाओं का उदाहरण हम वर्तमान युग में देख सकते हैं कि किस प्रकार से मनुष्य का प्रकृति में बढ़ता हस्तक्षेप पर्यावरण के लिए अत्यंत दुष्कर साबित हो रहा है एवं प्रत्येक दिन कोई ना कोई प्राकृतिक आपदा काल बनकर हमारे आसपास मंडराती रहती है। (भार्गव, 2022)

यज्ञ की अवधारणा

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में यज्ञ को एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान माना जाता है। यह यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठानी नहीं था अपितु वायुमंडल की शुद्धि और वर्षा के चक्र को बनाए रखने का एक वैज्ञानिक प्रयास भी था। ऐसा माना जाता है कि जब गाय के घी एवं प्राकृतिक सामग्रियों के आहुति अग्नि कुंड में दिए जाती है तो उसे जो दुआ निकलता है वह वायुमंडल में उपस्थित विषैली गैसों के प्रभाव को काम करके वायु को शुद्ध बनता है एवं वर्षा चक्र को संतुलित भी रखता है। (भार्गव,2022)

भारतीय चिंतन में पंचमहाभूत एवं पारिस्थितिकी तंत्र

भारतीय दर्शन के अनुसार, सृष्टि का निर्माण पांच तत्वों से मिलकर हुआ है। यथा- पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि एवं आकाश इन पंचमहाभूतों का आपस में अंतर संबंध हैं। आधुनिक विज्ञान जिसे हम इकोसिस्टम अथवा स्थिति के तंत्र कहते हैं भारतीय मनुष्यों ने उसे बहुत पहले ही स्पष्ट कर दिया था। (मिश्रा, 2017)

पृथ्वी

पृथ्वी को जैव विविधता का आधार माना गया है क्योंकि पृथ्वी पर ही सभी प्रकार के जीव जंतु मनुष्य एवं पौधों का जन्म एवं विकास होता है।

जल

जल को जीवन का स्रोत माना जाता है वेदों में जल को भेषज कहां गया है जिसका अर्थ है औषधि, अतः सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जल को प्रत्येक रोग की औषधि माना गया है तथा इसके संरक्षण पर बल दिया गया है। (मिश्रा, 2017)

अग्नि

अग्नि को ऊर्जा का स्रोत माना गया है। (मिश्रा, 2017)

वायु

वायु को प्राण शक्ति माना गया है क्योंकि बिना वायु के किसी भी जीव मनुष्य अथवा वनस्पतियों का जीवित रहना लगभग नामुमकिन है। (मिश्रा, 2017)

आकाश

आकाश वह विस्तार है जिसमें सब कुछ समाहित है अतः विषैली गैसों के द्वारा आकाश में जो प्रदूषण उत्पन्न होता है उसे दूर करने के लिए प्रयत्न करने चाहिए।

भारतीय जीवन शैली एवं सतत विकास की अवधारणा

जैसा कि ऊपर बताया गया है सतत विकास का अर्थ है कि संसाधनों का उतना ही उपयोग किया जाए जिससे प्रकृति में उन संसाधनों की समाप्ति ना हो सके तथा भविष्य के लिए भी संसाधनों की उपलब्धता बनी रहे। भारतीय परंपरा में इस प्रकार के जीवन शैली के उदाहरण अनेकों जगह मिलते हैं। (अवस्थी एवं चंद्र, 2023)

अपरिग्रह

अपरिग्रह का सिद्धांत जैन एवं योग दर्शन से लिया गया है जो हमें यह सिखाता है कि अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं से अधिक किसी भी वस्तु का संजय ना करें। वर्तमान की भोगवादी संस्कृति को दृष्टि में रखते हुए यह इस समस्या का सबसे बड़ा समाधान साबित हो सकता है। अपरिग्रह का या सिद्धांत हमें अपने जीवन शैली को प्रकृति के अनुरूप ढालने मैं सहायता प्रदान कर सकता है।

अहिंसा

अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक रूप से किसी को कष्ट पहुंचाना नहीं है अपितु पर्यावरण के प्रति भी अहिंसक होना आज एक महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। मनुष्य विकास की दौड़ में इतना अंधा हो चुका है कि वह यह भी ध्यान नहीं रखता कि उसके इस प्रकार के विकास से पर्यावरण को कितनी हानि पहुंच रही है, तथा कितने ही जीव अपना जीवन एवं बसेरा को रहे हैं, इस संदर्भ में

अहिंसा का यह सिद्धांत हमें यह सिखाता है कि सूक्ष्मजीवों से लेकर बड़े पशुओं तक की रक्षा करने का भाव सतत विकास के लक्षण के अनुरूप है। इस प्रकार हम पारिस्थितिक संतुलन एवं संसाधनों का संरक्षण दोनों कर सकते हैं।

वृक्षारोपण एवं निषेध

हमारे वेदों और पुराणों में एक वृक्ष को 10 पुत्रों के समान बताया गया है। यथा-

दशकूपसमा वापी, दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो, दशपुत्रसमो द्रुमः॥ म० पु० 154/512 पीपल बरगद और तुलसी जैसे पौधों को पूजनीय बनाकर उनकी पूजा करना सुनिश्चित किया गया है जिससे कोई भी उनको कट न सके एवं उन पौधों का संरक्षण कर सके। (जायसवाल, 2024)

प्राचीन कृषि व्यवस्था एवं पर्यावरण संरक्षण

जहां एक और आज बढ़ती जनसंख्या के कारण अत्यधिक पैदावार लेने के लिए किसान अपने खेतों में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करके अत्यधिक पैदावार लेने की कोशिश कर रहे हैं, जो कि स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। (अवस्थी एवं चंद्र, 2023) रासायनिक उर्वरकों के द्वारा जो भी फसल तैयार की जाती है उसका उपभोग करके हम गंभीर बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। वहीं दूसरी ओर प्राचीन भारत में परंपरागत तरीके से खेती की जाती थी, किसान फसल में गोबर की खाद का उपयोग करते थे जिससे शुद्ध एवं स्वास्थ्य के लिए लाभकारी खाद्यान्न प्राप्त किया जाता था। (सातवलेकर, 1967), (महावीर, 2014)

प्राचीन भारतीय चिंतन एवं जीव संरक्षण: प्राचीन काल में बेल अथवा गाय आजीविका के प्रमुख साधन माने जाते थे अतः उनके भी सुख की कामना की गई है। (सिंह, 2016) यह कामना अथर्ववेद में प्राप्त होती है कि व्यक्ति हल जोतते समय सदा आनंद की प्राप्ति करें। यदि कभी आवश्यकता पड़े तो चाबुक पकड़ने का उपदेश भी अथर्ववेद में हमें प्राप्त होता है। वैदिक कालीन समाज में गाय को अत्यंत पूजनीय एवं माता का स्वरूप माना गया है, इसीलिए गाय के प्रति हिंसा का सर्वत्र निषेध किया गया है। (वेदालंकार, 2011) अथर्ववेद के निम्न श्लोक के द्वारा गौ के संरक्षण के महत्व को व्यक्त किया गया है-

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रिरं चित्कृणथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणथु भद्रवाचो बृहद्वो वयं उच्यते सुभासुं।।
अथर्व० 4/21/6

व्याख्या: हे गौओं! तुम कृष को भी हष्ट पुष्ट कर देती हो, कांतिहीन, श्री विहीन को भी सुंदर अंगों वाला, स्वरूप कर देती हो। हे भद्र वाणी वालियों तुम घर को कल्याणमय, सुखी कर देती हो। तुम्हारा दूध, नवनीत दाढ़ी आदि भोजन अथवा तुम्हारा आयुष्य स्वभाव एवं गोष्ठियों में अत्यधिक प्रशंसा पाता है। (वेदालंकार, 2011)

एक अन्य शोक में पशुओं के प्रति हिंसा न करने एवं शाकाहारी भोजन ग्रहण करने का आग्रह किया गया है -

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।

एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ।

मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च।।

अथर्व० 6/140/2

व्याख्या: हे! ऊपर -नीचे के दंत समुदायों तुम चावल खाओ। जो खाओ और उड़द तथा तिल खाओ, यह तुम्हारा भाग रखा गया है रमणीय फल की प्राप्ति के लिए तुम नर्मदा जंतुओं को हिसित मत करो। (वेदालंकार, 2011)

पर्यावरण की वर्तमान स्थिति

पर्यावरण की अति प्राचीन परंपरा को आधुनिकता की इस नई अग्नि इस तरह नुकसान पहुंचा है कि पर्यावरण का स्वरूप पूर्णतया बदल चुका है। संसाधनों के दोहन तथा जीव हिंसा, शोषण वैभव एवं विलासिता की इस नई भोगवादी संस्कृति ने पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। जिसके फल स्वरुप आज जीवन भी संकटग्रस्त अवस्था में पहुंच गया है। चारों ओर अराजकता की स्थिति बनी हुई है एवं प्राकृतिक आपदाओं का क्रूर चक्र सब कुछ कल के काल में भेजने को तत्पर है । वर्तमान समय में मनुष्यों के द्वारा जिस प्रकार से वनों की अंधाधुंध कटाई की जा रही है इससे स्थिति और भी गंभीर होती जा रही है। मनुष्यों का पर्यावरण के प्रति यह उदासीन व्यवहार अपेक्षा मात्र न रहकर अनौचित्य और अत्याचार की सीमा को लांघने के लिए तैयार बैठा है। विकास के नाम पर वनों की कटाई के कारण वनों का क्षेत्रफल निरंतर काम होता जा रहा है पर्यावरण विशेषज्ञों का कहना है कि यदि इसी प्रकार चला रहा तो पर्यावरण संतुलन एवं जीवन रूपी रथ चक्र जल्दी ही संकट में आ जाएगा। (श्रीवास्तव, 2019)

उपसंहार

भारतीय पर्यावरण चिंतन केवल वैज्ञानिक आधार पर ही नहीं अपितु आध्यात्मिक को नैतिक आधार पर भी प्रकृति के प्रति सम्मान एवं संसाधनों का संरक्षण करना सीखना है। हमारा यह भारतीय चिंतन उपभोग के बजाय सह अस्तित्व के विचार पर आधारित है। यह सतत विकास की अवधारणा तब तक पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाएगी जब तक से इसे केवल तकनीकी या कानूनी मामला माना जाएगा। हमें इस अवधारणा को अपने जीवन की पद्धति बनाना होगा, अपने व्यवहार में पूर्णतया सम्मिलित करना होगा जो भारतीय संस्कारों में प्राचीन काल से ही मौजूद रही है, इस विषय में मनुस्मृति में कहा गया है कि, **धर्मो रक्षति रक्षितः मनु० 8/15** अर्थात् यदि तुम धर्म की रक्षा करोगे तो धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। मनुस्मृति का यह श्लोक यहां पर्यावरणीय भाव के रूप में दिया गया है जो इस प्रकार है कि यदि तुम प्रकृति की रक्षा करोगे तो प्रकृति तुम्हारी रक्षा करेगी।यदि हमें सतत विकास की वैश्विक अवधारणा को सफल बनाना है तो हमें प्रकृति के दोहन के स्थान पर प्रकृति के पोषण की ओर लौटना होगा जिसकी जे हमें केवल प्राचीन भारतीय साहित्य में ही प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे भारतीय चिंतन में प्राचीन काल से ही उपभोग के बजाय सहयोग अथवा सह अस्तित्व का भाव विद्यमान रहा है, हमें वर्तमान तथा भविष्य में भी उसी भाव के साथ प्रकृति के साथ व्यवहार करता है एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर उन्हें भविष्य के लिए सुरक्षित रखना है।

संदर्भ सूची

1.वेदालंकार डॉ० रामनाथ, ऋग्वेद ज्योति, 2006, गोविंदराम हासानंद 4408, नई सड़क, दिल्ली।

2. वेदालंकार डॉ० रामनाथ, अथर्ववेद ज्योति, 2011, श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान।

3. महावीर, वेदों में आर्थिक चिंतन, 2014, गतिशील प्रकाश, उत्तम नगर, नई दिल्ली।

4. गुप्ता डॉ० दीपा, वैदिक युगीन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, 2011, आर० डी० पाण्डेय, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

5. मिश्रा डॉ० संजू, प्राचीन संस्कृत साहित्य में पर्यावरण परिशीलन, 2017, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

6. सिंह, भगवान, हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, 2016, राधा कृष्ण प्रकाश प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली।

7. अवस्थी, निवेदिता, चंद्र योगेश, सतत् विकास की अवधारणा, 2023, नालंदा प्रकाशन, दिल्ली।

8. पाण्डे गोविन्द चंद्र, वैदिक संस्कृति, 2019, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।

9. द्विवेदी, डॉ० कपिल, वेदों में विज्ञान, 2000, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही)।

10. चतुर्वेदी, गिरिधर, शर्मा, वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, 2000, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

11. सिंह, प्रो० जगबीर, वैदिक ज्ञान परंपरा और गुरुवाणी, 2025, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली।

12. अग्रवाल, वासुदेव शरण, पृथिवी पुत्र, 1989, मार्तंड उपाध्याय मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।

13. सिंह, डॉ० अमरजीत, सतत विकास के आयाम, 2007, मधुकर प्रकाशन, आगरा।

14. पांडे, सीता, पर्यावरण हितैषी भारतीय ज्ञान परंपरा (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण), Scholarly research journal for interdisciplinary studies, online ISSN 2278-8808, July - Aug 2025, vol- 14/90

15. मीना, डॉ० महेंद्र कुमार, पर्यावरण की रक्षा: भारतीय संदर्भ में संवैधानिक और न्यायिक दृष्टिकोण, JETIR May 2029, vol 6, issue 5, ISSN- 2349-5162

16. श्रीवास्तव, राजीव कुमार, पर्यावरण संरक्षण की भारतीय परंपरा, Aryavrat shodh vikas Patrika, ISSN- 2347-2944, vol-10, issue - 11, June 2019

17. जायसवाल, संदीप कुमार, "हिंदू धर्म दर्शन एवं पर्यावरण में संबंध", International journal of creative research thoughts (IJCRT), ISSN- 2320-2882, vol- 12, 5 May 2024

18. सोहनलाल, भारतीय संस्कृति और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, international journal of humanities and social science invention (IJHSSI), ISSN- 2319-7722, vol- 12, December 2024

19. कटारिया, मोनिका, भारतीय जीवन दर्शन में पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण से संबद्ध विभिन्न दृष्टिकोण, international journal of education, modern management, applied science & social science, ISSN- 2581-9925, vol- 03, January - March 2021

20. Maharana, Subhasmita, Behrua, Ajit Kumar, harmony with nature: exploring sustainable development through the lens of Hindi tradition, problemy ekorozwoju/ problems of sustainable development, published online, 1.07.2024

21. भार्गव प्रो० दयानंद, वेद- विज्ञान वीथिका, 2022, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।

22. पाण्डेय, अजय कुमार, वैदिक- विज्ञान - परंपरा, 2005, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।

23. कुमार, ध्रुव, बौद्ध धर्म और पर्यावरण, 2019 प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

24. वेदश्रमी, श्री वीरसेन, वैदिक सम्पदा, 2008, विजयराम गोविंदराम हासानंद, दिल्ली।

25. https://www.britannica.com/topic/dharma-religious-concept